तत्व दर्शन

सेवा कर निर्बन्ध की

पूज्यपाद संत श्री आसाराम जी बापू

परब्रह्म परमात्मा को न जानना उसका नाम है अविद्या । उसे कारण शरीर भी कहते हैं । कारण शरीर से सूक्ष्म शरीर बनता है । सूक्ष्म शरीर की माँग होती है देखने की, सूघँने की, चखने की । सूक्ष्म शरीर की इच्छा होती है तो फिर स्थूल शरीर धारण होता है । स्थूल शरीर के द्वारा जीव भोग की इच्छाओं को पूर्ण करना चाहता है । स्थूल शरीर से भोग भोगते-भोगते सूक्ष्म शरीर को लगता है कि इसी में सुख है और अपना जो सुखस्वरूप है उसे भूल जाता है । अविद्या के कारण ही व्यक्ति अपने असली स्वरूप को जान नहीं पाता है ।

यह बहुत सूक्ष्म बात है । यह ब्रह्म विद्या है । इसको सुनने मात्र से जो पुण्य होता है, उसको बयान करने के लिए घंटो का समय चाहिए । इसे सुनकर थोड़ा बहुत मनन करे उसका तो कल्याण होता ही है लेकिन मनन के पश्चात् निदिध्यासन करके फिर उस परमात्मा में डूब जाए, परमात्मामय हो जाए तो उसके दर्शन मात्र से औरों का भी कल्याण हो जाता है । नानक जी कहते हैः

ब्रह्मज्ञानी का दर्शन बड़भागी पावै।

भाग्यवान व्यक्ति ही ब्रह्मज्ञानी महापुरूष के दर्शन कर सकता है । अभागे को ब्रह्मज्ञानी के दर्शन भी नहीं होते हैं । थोड़े भाग्य होते हैं तो धन मिल जाता है । थोड़े ज़्यादा भाग्यवान को पद-प्रतिष्ठा मिलती है लेकिन महाभाग्यवान को संत मिलते हैं । संत का मतलब है जिनके जन्म मरण का अन्त हो गया है, जिनकी अविद्या का अंत हो गया है । ऐसे संतो के लिए तुलसीदास जी ने कहा हैः

पुण्य पुंज बिनु मिलहिं न संता।

जब व्यक्ति के पुण्यों का पुंज, पुण्यों का खज़ाना भर जाता है तब उसे संत मिलते हैं और जब संत मिलते हैं तो भगवान मिलते हैं । भगवान की कृपा से, पुण्यों के प्रभाव के कारण संत मिलते हैं । जब दोनों की कृपा होती है तब आत्म-साक्षात्कार होता है ।

ईश कृपा बिन गुरू नहीं, गुरू बिना नहीं ज्ञान ।

ज्ञान बिना आत्मा नहीं, गावहीं वेद पुराण ।।

ईश्वर की कृपा के बिना गुरू नहीं मिलते और गुरू की कृपा के बिना ज्ञान नहीं मिलता ।

गुरू का मतलब यह नहीं कि थोड़ा त्राटक आदि कर लिया, थोड़ी-बहुत बोलने की कला सीख ली, थोड़े-बहुत भजन-कीर्तन, किस्से-कहानियाँ, कथा-प्रसंगों से लोगों को प्रभावित कर दिया और बन गए गुरू ।

गोपो वीज्जी टोपो घिसकी वेठो गादीय ते।

गोपा टोपा पहनकर गादी पर बैठ गया और गुरू बन कर कान में फूँक मार दिया, मंत्र दे दिया, माला पकड़ा दी । आजकल ऐसे गुरूओं का बाहुल्य है ।

विवेकानन्द कहते थेः "गुरू बनना माने शिष्यों के कर्मों को सिर पर ले लेना, शिष्यों की जिम्मेदारी लेना । यह कोई बच्चों का खेल नहीं है ।" आजकल जो गुरू बनने के चक्कर में पड़ गए हैं वे लोग ऐसे हैं जैसे कंगला आदमी प्रत्येक व्यक्ति को हज़ार सुवर्णमुद्रा दान करने का दावा करता है । ऐसे लेभागु गुरूओं के लिए कबीर जी ने कहा हैः

गुरू लोभी शिष्य लालची, दोनों खेले दाँव ।

दोनों डूबे बावँरे चढ़ी पत्थर की नाव ।।

एक राजा था । उसका कुछ विवेक जगा था तो वह अपने कल्याण के लिए कथा-वार्ताएँ सुनता रहता था पर उसके गुरू ऐसे ही थे । राजा को उनकी कथाओं से कोई तसल्ली नहीं मिली, चित्त को शांति नहीं मिली ।

आखिर वह राजा कबीर जी के पास आया । उसने कहाः "महाराज, मैंने बहुत कथाएँ सुनी हैं लेकिन आज तक मेरे चित्त को चैन नहीं मिला ।"

कबीर जी ने कहाः "अच्छा, मैं कल राजदरबार में जाऊँगा । तुम अठारह साल से कथा सुनते हो और शांति नहीं मिली ? कौन तुम्हें कथा सुनाते हैं वह मैं देखूँगा ।" दूसरे दिन कबीर जी राजदरबार में गए । उन्होंने राजा से कहाः "जिनसे ज्ञान लेना होता है, जिनसे शांति की अपेक्षा रखते हो उनके कहने में चलना पड़ता है ।" राजा ने कहाः "महाराज, मैं आपके चरणों का दास हूँ । आपके कहने में चलूँगा । आप मुझे शांतिदान दें ।"

कबीर जी ने कहाः "मेरे कहने में चलते हो तो वजीरों से कह दो कि कबीर जी जैसा कहें वैसा ही करना ।" राजा ने वजीरों से कहाः "अब मैं राजा नहीं हूँ, ये कबीर जी महाराज ही राजा हैं । उन्हें सिंहासन पर बिठा दो ।" कबीर जी राजा के सिंहासन पर विराजमान हो गए । फिर कबीर जी ने कहाः अच्छा, "वजीरों को मैं हुक्म देता हूँ कि जो पंडित जी तुम्हें कथा सुनाते हैं, उनको एक खम्भे के साथ बाँध दो ।"

राजा ने कहाः "भाई, उनको महाराज जी के आगे खम्भे के साथ बाँध दो ।" पंडित जी को एक खम्भे के साथ बाँध दिया गया । फिर कबीर जी ने कहाः "राजा को भी दूसरे खम्भे से बाँध दो ।" वजीर थोड़ा हिचकिचाए किन्तु राजा का संकेत पाकर उन्हें भी बाँध दिया । इस तरह पंडित जी और राजा दोनों बँध गए । अब कबीर जी ने पंडित से कहाः "पंडित जी, राजा कई वर्षों से तुम्हारी सेवा करता है, तुम्हें प्रणाम करता है, तुम्हारा शिष्य है, वह बँधा हुआ है उसे छुड़ाओ ।"

पंडित ने कहाः "मैं राजा को कैसे छुड़ाऊँ ? मैं खुद बँधा हुआ हूँ ।" तब कबीर जी ने कहाः

बन्धे को बन्धा मिले छूटे कौन उपाय ।

सेवा कर निर्बन्ध की जो पल में देत छुड़ाए ।।

जो खुद स्थूल शरीर में बँधा हुआ है, सूक्ष्म शरीर में बँधा है, विचारों में बँधा है, कल्पनाओं में बँधा है ऐसे कथाकारों को, पंडितों को हज़ारों वर्ष सुनते

रहो फिर भी कुछ काम नहीं होगा । उससे चित्त को शांति, चैन, आनन्द, आत्मिक सुख नहीं मिलेगा ।

सेवा कर निर्बन्ध की जो पल में देत छुड़ाए।

निर्बन्ध की सेवा से, निर्बन्ध की कृपा से अज्ञान मिटता है और आत्मज्ञान का प्रकाश मिलता है । सच्ची शांति और आत्मिक सुख का अनुभव होता है ।

मनुष्य अविद्या के कारण किसी कल्पना में, किसी मान्यता में, किसी धारणा में बँधा हुआ होता है । पहले वह तमस में, आसुरी भाव में बँध जाता है । धन तो बैंक में होता है और मनुष्य मानता है "मैं धनवान ।" पुत्र तो कहीं घूम रहे हैं और मानता है 'मैं पुत्रवान ।' फिर 'मैं त्यागी...मैं तपस्वी...मैं भोगी...मैं रोगी...मैं सिंधी...मैं गुजराती...' इसमें मनुष्य बँध जाता है । उससे थोड़ा आगे निकलता है तो 'मैं कुछ नहीं मानता...जात-पांत में नहीं मानता...मैं किसी पंथ में नहीं मानता ।' इस तरह 'न माननेवाले' में बँध जाता है ।

ऐसा जीव न जाने किस गली से निकलकर किस गली में फँस जाता है । किस भाव से छूटकर किस भाव में बँध जाता है । लेकिन जब जीव को निर्बंध पुरूष, सदगुरू मिल जाते हैं तो वह उनकी कृपा से सब बँधनों से मुक्त हो जाता है, उसकी अविद्या दूर हो जाती है और वह ज्ञानस्वरूप परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है । वह ब्रह्मवेत्ता हो जाता है ।